पूर्वोत्तर भारत की औपन्यासिक अभिव्यक्ति

अरविंद कुमार यादव

उपन्यास साहित्य की एक प्रमुख विधा है। इसमें व्यक्ति और समाज के अंतरसंबंधों को व्यक्त करना अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक सरल है। आकार में सामान्यतः दीर्घ होने के कारण पाठकों से यह अधिक श्रम की माँग करता है। उपन्यास का आस्वाद विकसित होने के उपरांत पाठक के समक्ष नई दुनिया के द्वार खुल जाते हैं। पूर्वोत्तर भारत को जानने की दृष्टि से हिंदी पाठकों के समक्ष हिंदी उपन्यास ने यही द्वार खोला है। पूर्वोत्तर भारत के विभिन्न समाजों को समझने के लिए हिंदी उपन्यास एक उचित माध्यम हो सकता है। उत्तर-पूर्व के लगभग सभी राज्यों को केंद्र में रखकर उपन्यास लिखे गए हैं। इन सभी उपन्यासों की विषयवस्तु में वैविध्य है। विषय वस्तु के वैविध्य और विस्तार की क्षमता के कारण हिंदी उपन्यास इनकी अभिव्यक्ति का प्रमुख स्वर बना है। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय से पूर्वोत्तर के विषय में हिंदी में उपन्यास ही नहीं बल्कि साहित्य सहित अन्य माध्यमों का अभाव लंबे समय तक बना रहा। लेकिन कालांतर में हिंदी उपन्यास ने इस स्थान को भरने का महत्वपूर्ण कार्य किया। ब्रह्मपुत्र उपन्यास से प्रारंभ हुआ यह क्रम निरंतर जारी है। हाल के वर्षों में यहाँ के हिंदी उपन्यास लेखन में तेजी आई है। हिंदी उपन्यास के संदर्भ में यह सुखद है कि कुछ वर्षों से यहाँ के स्थानीय रचनाकार भी सृजनात्मक साहित्य का लेखन कर रहे हैं।

प्रस्तुत शोध-आलेख में पूर्वोत्तर भारत के राज्यों पर केंद्रित उपन्यासों की चर्चा की गई है। इसमें उपन्यासों का क्रमवार अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, जिससे कि यहाँ के हिंदी उपन्यासों का विकास क्रम समझने में सुविधा हो। पूर्वोत्तर भारत की हिंदी में प्रथम औपन्यासिक अभिव्यक्ति 'ब्रह्मपुत्र' के माध्यम से हुई। नदी अपने किनारे बसने वाले समुदायों की संस्कृति निर्मित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। इसी भूमिका को ध्यान में रखते हुए इस कृति की रचना की गई है। उपन्यास के केंद्र में ब्रह्मपुत्र के तट पर बसा दिसांगमुख है। इस उपन्यास में वर्णित कुछ घटनाएँ माजुली में घटित होती हैं। विषय की दृष्टि से इसके केंद्र में स्वतंत्रता संघर्ष में दिसांगमुख की भागीदारी है। इस उपन्यास में दिसांगमुख अपनी समग्रता में हमारे समक्ष आता है। ब्रिटिश शासन के अंतर्गत सरकारी दमन एवं शोषण है तो देवकांत के नेतृत्व में इसका प्रतिकार भी है। ब्रह्मपुत्र की बाढ़ है, जिसके माध्यम से वह स्वयं को अभिव्यक्त करता है। इस बाढ़ के साथ ही आता है ध्वंस । बाढ़ के इसी ध्वंस में सृजन का बीज बिंदु भी छिपा होता है। कथानक का विकास होते-होते आजादी के संघर्ष से जुड़ता है। इसका समय भारत छोड़ो आंदोलन से लेकर स्वाधीन भारत के कुछ बाद तक का है। चूंकि उपन्यास का विस्तार परतंत्र भारत और स्वतंत्र भारत दोनों में ही है, इसलिए यह उपन्यास स्वप्न, संघर्ष और यथार्थ का संगम है। दिसांगमुख में स्वातंत्र्य चेतना देवकांत के आगमन और नारायण दरोगा के अत्याचार से विकसित होती है। इस उपन्यास का वितान विस्तृत होते हुए जब स्वतंत्रता संघर्ष को छूता है, तब भारत माता के स्वरूप, उसकी पीड़ा, मुक्ति आदि पर भी चर्चा होती है। भारत माता कौन है? की पर्याप्त चर्चा स्वतंत्रता के संदर्भ में हुई

है। देवकांत कहता है कि भारत माता कोलकाता में है और इसी भारत माता के संदर्भ में देवकांत की माता की दुर्दशा का चित्रण हुआ है। दोनों माताओं का साझा दुख उन्हें एक बिंदु पर लाकर खड़ा कर देता है। वहीं अतुल कहता है कि भारत माता के कई रूप हैं लेकिन वह केवल दिसांगमुख माता को ही जानता है। इसलिए वह दिसांगमुख में ही रहकर स्वतंत्रता के संघर्ष को धार देने की बात कहता है। भारत माता का स्वरूप नीरद के वक्तव्य से अधिक स्पष्ट होता है। वह कहता है कि- "भारत माता की जय! यहाँ यह प्रश्न उठाया गया है कि भारत माता को तो आप लोग नहीं जानते, और आप तो अपनी-अपनी माता को ही जानते हैं। हमारे देश में तो कई प्रांत हैं। बंगाल, असम और उड़ीसा, मद्रास, यू.पी. और बिहार ; पंजाब, फ्रंटियर और बंबई। हमारा देश तो विशाल है। यहाँ सात लाख गाँव हैं। ये सात लाख गाँव माताएँ मिलकर एक ही नाम से पहचानी जाती हैं; वह नाम है भारत माता।"[i] इसी भारत माता की मुक्ति का स्वप्न संघर्ष दिसांगमुख में बुना जा रहा था। उपन्यास का आरंभ ब्रह्मपुत्र नदी की कथा से होता है, लेकिन समापन देवकांत की शहादत और राखाल काका के मोहभंग से होता है। अतुल, राखाल और नीरद ने ब्रिटिश सरकार को चुनौती देते हुए छः-छः माह की सजा स्वीकार की लेकिन जुर्माना नहीं भरा। इन तीनों के संघर्ष और सजा के माध्यम से गांधी जी का सत्याग्रह दिसांगमुख तक की यात्रा तय कर चुका था। इसमें जनभागीदारी तो कम थी, लेकिन संभावना भी इसी में अधिक थी। राखाल काका स्वतंत्रता के पश्चात भी अपनी पेंशन बहाल नहीं करवाते हैं क्योंकि उनके अनुसार यह वह स्वतंत्रता नहीं थी जिसकी उन्होंने कल्पना की थी। यह मोहभंग लोगों की आकांक्षाओं-अपेक्षाओं पर सरकारों के खरे न उतरने की ओर संकेत करता है।

इस कड़ी में मुक्तावती एक महत्वपूर्ण उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 1958 ई. में हुआ। इसके लेखक बलभद्र ठाकुर हैं। इस उपन्यास के केंद्र में मणिपुरी संस्कृति (विशेष रुप से मैतेई संस्कृति) और राजशाही के प्रति मणिपुरी जनता का विद्रोह है। उपन्यास की कथावस्तु ऐतिहासिक है, लेकिन विधागत आवश्यकता के अनुरूप कल्पना शक्ति का सहारा लिया गया है। उपन्यास के कथानक का काल 1925 ई. से 1936 ई. के बीच का है। मणिपुरी समाज और संस्कृति को स्वर देते समय लेखक सुंदरता के प्रति न अधिक मोह प्रदर्शित करता है और न ही विकृतियों से विमुख होता है। इसी कारण मणिपुरी समाज, संस्कृति, राजशाही और विद्रोह आदि को अभिव्यक्त करने में उपन्यासकार सफल हुआ है। उपन्यास के दो प्रमुख पात्र शैलेंद्र और चंद्रावत मार्क्सवाद और गांधीवाद की पैरोकारी करते दिखाई देते हैं। चूँकि लेखक स्वयं मार्क्सवादी रुझान का था और इसके साथ ही उपन्यास के प्रकाशन वर्ष के दौरान वामपंथ और गांधीवाद की विशेष चर्चा रही है। इस कारण लेखक इन दोनों विचारधाराओं से प्रभावित होकर कल्पना शक्ति के सहारे दो भिन्न विचार रखने वाले युवाओं को सृजित कर मार्क्सवाद और गांधीवाद के द्वंद्व को विकसित करते हुए समन्वय के बिंदु तक पहुँचता है। इसके संदर्भ में इंद्रचंद्र नारंग लिखते हैं कि - "इस मुक्तावती उपन्यास की सबसे बड़ी विशेषता है- विचारों और आदर्शों का समन्वय। गांधीवाद और मार्क्सवाद का अर्थात गांधीवादी और मार्क्सवादी पात्रों के सिद्धांतगत द्वंद्व के भीतर से उनके पारस्परिक प्रेमपूर्ण जीवन का बड़ा सुंदर समन्वय बलभद्र ठाकुर ने प्रतिष्ठित किया है।"[ii] इन दोनों पात्रों के वैचारिक चिंतन के केंद्र में भारत एक राष्ट्र के रूप में निरंतर बना रहता है। चूंकि शैलेंद्र

बंगाली था और चंद्रावत मैतेई इसलिए प्रांतवाद का जिक्र होना स्वाभाविक था। दोनों ही पात्रों में प्रांतवाद की दरार नहीं दिखाई पड़ती है। लेकिन वह ऐसे अन्य पात्रों के प्रांतवाद का प्रतिवाद करते हुए भेदभाव रहित एक भारत को रचते नजर आते हैं। उदाहरण के लिए चंद्रावत-श्रीअचउ सिंह और शैलेंद्र- अनिल घोष- अघोर बाबू- हरेंद्र चटर्जी के संवादों में दूसरे जातीय समूह और प्रांत के प्रति हीन भाव देखी जा सकती है। संवाद में शैलेंद्र और चंद्रावत दूसरी जातीय अस्मिताओं को सम्मान से देखने के तो वहीं अनिल घोष और श्रीअचउ सिंह अन्य समुदाय के प्रति घृणा प्रकट करने वाले प्रतिनिधि पात्र हैं। दो समुदायों और प्रांतों के बीच के इस दुराव को देखकर शैलेंद्र दुखी हो जाता है और कहता है- "तुम तो मुसका रहे हो चंद्रावत, लेकिन तुम्हारे ही इस उदाहरण से क्या यह घातक संभावना नहीं प्रकट होती कि कहीं जातिवाद और प्रांतवाद की यह संकीर्णता किसी दिन भारत भूमि को भी खंड-खंड न कर दे।"[iii] दरअसल शैलेंद्र की यह चिंता किसी भी भारतीय की हो सकती है। राष्ट्र की बेहतरी की चिंता हमारे समग्र चिंतन में प्राण वायु की तरह प्रवाहित होती रहती है। हमारे सभी कर्मों में इसकी झलक देखी जा सकती है। शैलेंद्र इसी चिंतन में जातिवाद और प्रांतवाद को राष्ट्र की एकता के लिए विनाशकारी मान रहा है। उसकी चिंता यह है कि जैसे-जैसे यह रोग बढ़ेगा राष्ट्र की आत्मा और काया क्षीण होती जाएगी।

खम्ब-थोइबी उपन्यास का प्रकाशन 1963 ई. में हुआ। इसके लेखक श्रीलोइतोंगबम कालाचान्द सिंह हैं। इस उपन्यास की कथावस्तु मणिपुर के जनजीवन और संस्कृति से संबंधित है। कथा का आधार खम्ब-थोइबी की पौराणिक कथा है। इसमें खम्ब और उसकी बहन खम्नु के माध्यम से कथानक के काल में मणिपुरी समाज में व्याप्त गरीबी को दर्शाया गया है। राज दरबार कथा के केंद्र में है, जहाँ खम्ब को यथोचित सम्मान मिलता है और वहीं के एक दरबारी नोंगबोन से चुनौती भी मिलती है। राजकुमारी थोइबी खम्ब से प्रेम करती है लेकिन नोंगबोन थोइबी को पाने का षड्यंत्र करता रहता है। अंततः खम्ब नोंगबोन को पराजित कर थोइबी को पाने में सफल हो जाता है। इसी के साथ उपन्यास की समाप्ति हो जाती है।

कृष्णचंद्र शर्मा 'भिक्खु' कृत 'रक्तयात्रा' नागा जनजीवन और उनके संघर्षो पर केन्द्रित महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसका प्रकाशन 1978 ई. में हुआ। उपन्यास को तीन भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग 'आदिम जीवन : शिरच्छेदक', द्वितीय भाग 'युगान्तर : गोरे आए' और तृतीय भाग 'नया सवेरा : संघर्षों की राह है। इन तीन अध्यायों के अंतर्गत क्रमशः उनकी आदिम जीवन शैली और नरमुंड शिकार, ब्रिटिश सरकार से संघर्ष और नए वृहत्तर नागालैंड के स्वप्न के साथ भारत सरकार से संघर्ष है। प्रथम अध्याय पूर्ण रूप से काल्पनिक होकर संस्कृति की कथा कहता है। यह पूरा अध्याव हेड हंटर्स, त्योहार और जीवन की आदिम परिस्थितियों पर केंद्रित है। अध्याय में लेखक संस्कृति की कथा कहने में सफल हुआ है, लेकिन जहाँ वह प्रेमी-प्रेमिका के यौन संबंधों की कथा कहता है वहाँ वह अनावश्यक प्रतीत होता है। ऐसा वर्णन पाठकीय रूचि को विकसित करने के उद्देश्य से किया गया हो, ऐसा संभव है। द्वितीय और तृतीय अध्याय ऐतिहासिक है। उपन्यास का प्रारंभिक पात्र केदीलिनो है, जिसकी तीन पीढ़ियों के माध्यम से नागाओं के समग्र जीवन का

विकासोन्मुख चित्र अंकित किया गया है। दूसरे अध्याय में संगठित नागा राष्ट्र की संकल्पना उभर कर सामने आती है, जिसका प्रतिनिधि पात्र वियाले है। तीसरी पीढ़ी के माध्यम से उनका उद्देश्य और अधिक स्पष्ट होने लगता है, जिसके परिणामस्वरूप संघर्ष भी तीव्र हो जाता है। इस पीढ़ी के प्रतिनिधि पात्र विजेलू और विचो हैं। विजेलू और विचो के संवाद से नागा राष्ट्र के लिए हो रहे संघर्ष और यथार्थ की विसंगतियाँ स्पष्ट रूप से सामने आती हैं। इस हिंसक संघर्ष पर प्रश्न चिन्ह लगाते हुए विचो अपने भाई विजेलू से पूछती है कि – "पर यह तो बताओ कि यह खून-खराबा कब तक चलता रहेगा?... पर उन नागाओं की जान का बदला किससे लोगे जिन्हें खुद हमने मारा है।"[iv] विचो का यह प्रश्न इस ओर भी संकेत करता है कि समय-समय पर नागाओं के बीच से ही इस सशस्त्र संघर्ष की प्रासंगिकता पर प्रश्न चिन्ह खड़े किए जाते रहे हैं। इन दोनों पात्रों में से विजेलू नागा राष्ट्र को सच होते देखने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है तो विचो स्वाधीन नागा राष्ट्र और उसके लिए हो रहे संघर्षों पर प्रश्नवाचक चिन्ह छोड़ते हुए चलती है। कथा का समापन लेखक ने आदर्शवादी ढंग से किया है, जहाँ पर क्रूर विजेलू अंततः शांति का पक्षधर हो जाता है। नागा संस्कृति और संघर्ष को समझने के लिए यह एक महत्वपूर्ण उपन्यास है।

सन् 1983 ई. में प्रकाशित 'जय आइ असम' नवारुण वर्मा का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसकी कथावस्तु एक आंदोलन के इर्द-गिर्द घूमती है, जो एक साथ कई समस्याओं के साथ जुड़ती है। बाहर से आकर बसे लोगों और मूल असमिया के बीच के द्वंद्व को यह उपन्यास सुंदर ढंग से प्रस्तुत करता है। यह प्रश्न जब भी सामने आता है एक गंभीर संकट खड़ा हो जाता है। अमृत फूकन और उनके साथी वकीलों के बीच इस मुद्दे को लेकर जो बहस होती है, वह द्रष्टव्य है- "जो लोग विदेश से आकर पिछले तीस सालों से वैध रूप से अवैध रूप से बसते रहे हैं, चुनावों में वोट भी डालते रहे हैं, जमीन-जायदाद, दूकानें आदि बना ली हैं, उन्हें अकस्मात विदेशी घोषित कर निकाला भी कैसे जा सकता है?"[v] इस बहस का सार यह निकलता है कि बाहरी लोगों को चिन्हित कर लेने के पश्चात भी परिणाम नगण्य ही रहेगा। एक बड़ी आबादी को कहाँ भेजा जाएगा और कैंपों में रखने पर सरकार और जनता पर ही भार बढ़ेगा, साथ ही नागरिकता संबंधी अंतरराष्ट्रीय समझौते भी एक बाधा है। इस उपन्यास के केंद्र में जो परिवार है, वह आंदोलन के विरोधाभासी स्वरूप को प्रकट करता है। अमृत फूकन की बेटी नमिता जय आइ असम के नारे लगाती है, बेटा नरेन इसके विरुद्ध है जबकि अमृत फूकन बीच का कोई रास्ता निकालना चाहते हैं। इन्हीं के परिवार में भोला नौकर है जो पूर्वी बंगाल से आकर यहाँ बसा था। यह सारी स्थितियाँ उस विरोधाभास का निर्माण करती हैं, जिसे पाटा जा सकना मुश्किल प्रतीत होता है।

इस उपन्यास में वर्णित समस्या असम की स्थाई समस्या बन गई है। यह समस्या पिछले कई दशकों से असमिया मानुष और उसकी अनुपम संस्कृति को भयभीत कर रही है। यहाँ तक कि जन भावनाओं को उभारकर राजनीतिक दल का निर्माण भी हुआ। कई दल इन्हीं समस्याओं को उभार कर सत्ता के शीर्ष पर भी पहुँचे, लेकिन समस्या का निदान नहीं हो सका। प्रस्तुत उपन्यास की कथावस्तु इसी के इर्द-गिर्द घूमती है।

अमृत फूकन, नमिता, नरेन, मालती एक ही परिवार के सदस्य हैं। इनमें से कोई न कोई पात्र लगभग हर जगह उपस्थित है, वह अपनी बात कहता है और काम करता है। दिलचस्प बात यह है कि उपर्युक्त सभी पात्र भिन्न वैचारिक धरातल पर खड़े हैं। यह समस्या जब भी अपना सिर उठाती है तो असम में शरणार्थी शिविरों की बाढ़ सी आ जाती है, जैसे ब्रह्मपुत्र की बाढ़ ने शिविरों का रूप धारण कर लिया हो।

उपन्यास का सौन्दर्य अंतिम वाक्य तक विद्यमान है। उपन्यासकार कहीं भी अपने विचार या पूर्वाग्रह थोपते नहीं दीखता है। इस प्रकार के आंदोलनों की जैसी परिणति होती है, उपन्यास भी उसी प्रकार का है। कोई सुझाव नहीं है, कोई हल नहीं है और न ही कोई लेखकीय वक्तव्य। पात्र अपने-अपने काम में रत, विचार मग्न हैं और कथा बढ़ती जाती है। आंदोलन की नायिका अस्पताल में बिस्तर पर पड़ी है। न आंदोलन समाप्त हुआ है, न सरकार का दमन चक्र और न ही नमिता जैसे आंदोलनकारियों का हौसला पस्त हुआ है। सरकारी दमन ने तटस्थ या सरकार समर्थकों के भीतर आंदोलन के प्रति सहानुभूति जगा दी है। इसके दो प्रमुख उदाहरण संदीप बरुआ और अमृत फूकन हैं।

'मुक्ति' उपन्यास वर्ष 1999 ई. में प्रकाशित हुआ। इसके लेखक डॉ महेंद्र नाथ दुबे हैं। इसकी कथा असम और तत्कालीन पूर्वी पाकिस्तान में घटित होती है। स्वतंत्रता के पश्चात हुए विभाजन और उससे उपजी त्रासदी को बहुत सुंदर ढंग से इस उपन्यास में पिरोया गया है। बँटवारे के समय अधिकांश लोग क्या सोच रहे थे, इसका चित्रण सुक्तादेवी- साँवरी संवाद में द्रष्टव्य है- "पागल हुई हो। बँटवारा देश का हुआ है न कि आदमियों का। अपनी धरती जमीन, घर- बार, बाग-बगीचा किसे प्यारा नहीं ... हिंदू होने भर से हिंदुस्तान वाले हिंदुओं को अपनी छाती में नहीं बसा लेंगे और मुसलमान होने भर से ही पाकिस्तान वाले किसी मुसलमान को सिर माथे नहीं चढ़ाएंगे।... संघर्षों से भागने पर मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति मिलेगी संघर्षों का सामना करने से।"[vi] विभाजन ने हिंदू-मुसलमान के आपसी विश्वास को खंडित कर दिया था, वही विश्वास जो विध्वंस की कई-कई परतें मिटाकर सृजन की कहानी लिखता है। उपन्यास के प्रारंभिक हिस्सों में इसी विश्वास के बनने और मिटने की कहानी कही गई है। जलील, चौधरी वलूलहक, दीनानाथ तिवारी, पंडित सुलोचन प्रसाद मिश्र और मैडम शिएरी जैसे पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने यह स्थापित करने का प्रयास किया है कि आदमी जिस जमीन पर रहता है, वही उसका गाँव-जवार और देश होता है। भला इससे परे देश क्या हो सकता है। विभाजन के समय यही सोच कर लोग अपनी जड़ जमीन नहीं छोड़ रहे थे। अपने गाँव-जवार, रोजी-रोजगार, खेत- खलिहान से परे राष्ट्र नाम की कोई संकल्पना उनके मष्तिष्क में नहीं थी, जो था बस यही था। दंगों के समय स्वार्थी- शरारती तत्व इस अवसर की ताक में रहते हैं कि अपने हित कैसे साधे जाएँ। ऐसा ही एक पात्र बशीर निवारण बाबू की हवेली और उनकी बेटी पर नज़र बनाए रखता है। जैसे ही दंगे शुरू होते हैं वह निवारण बाबू की हवेली पर कब्जा कर लेता है, लेकिन तब तक निवारण बाबू और उनकी बेटी विमल भाग जाते हैं। दंगों में ऐसे ही तत्वों की अधिकता रहती है जो जमीन-जोरू की तलाश में रहते हैं। धर्म की नैतिकता-अनैतिकता से इनका कोई संबंध नहीं होता, इन्हें बस जमीन चाहिए। वह अनाज उगाने की जमीन हो

या सृजन का भार लिए कोई युवती । इसी सृजन के माध्यम को रौंदकर धार्मिक कुंठा पूर्ण की जाती है। चौधरी वलूलहक और उनके बेटे का त्याग एवं समझदारी दंगों के थिर होने के पश्चात के समाज के लिए विश्वास पैदा करता है।

'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास मिजोरम के सशस्त्र विद्रोह पर आधारित है। 'माउटम' के बाद पनपे असंतोष ने कैसे एक बड़े विद्रोह का रूप धारण कर लिया, यह इस उपन्यास की कथावस्तु है। डोपा गाँव इसके केंद्र में है। उपन्यासकार इस दौरान खुफ़िया विभाग में कार्यरत था। इसी कारण वह विद्रोह की भावना और सरकारी तंत्र के इससे निपटने के तरीकों की तहों तक पहुँचने में सक्षम हो पाया है। लेखक की औपन्यासिक ईमानदारी की तुलना महाश्वेता देवी से करते हुए वीर भारत तलवार लिखते हैं कि- "श्रीप्रकाश मिश्र का यह उपन्यास बहुप्रचारित बांग्ला लेखिका महाश्वेता देवी के 'आदिवासी प्रेम' को दर्शाने वाले साहित्य से कहीं ज्यादा गहरा और सच्चा है।"[vii] वीर भारत तलवार की इस टिप्पणी में ईमानदारी प्रतीत होती है क्योंकि उन्होंने इस उपन्यास की प्रशंसा ही नहीं की है, अपितु इसकी खामियों को भी इंगित किया है। वे इसकी तुलना गोपीनाथ महंती के उपन्यासों से करते हुए इसे कला और जीवन दृष्टि के स्तर पर कमतर बताते हैं। स्त्री सौंदर्य बोध के स्तर पर लेखक पुरुषवादी मानसिकता से ग्रसित दिखाई देता है। लेकिन यहाँ विद्रोह और मिजो जनजीवन को ईमानदारी के साथ व्यक्त करने का प्रयास किया गया है, जो प्रशंसनीय है। लेखक विद्रोहियों के स्वप्न- जिजीविषा और सरकारी दमन की कहानी कहते हुए इसे बिना किसी आदर्शवादी हल के समाप्त करता है।

'उस रात की सुबह' अरुणाचल प्रदेश पर केंद्रित तुम्बम रीबा का महत्वपूर्ण उपन्यास, जिसका प्रकाशन 2018 ई. में हुआ। उपन्यास की प्रतिनिधि पात्र यापी है। यापी की बुआ की मृत्यु के पश्चात बुआ की जगह इसे ब्याह कर जाना था। इस घटना के इर्द-गिर्द कथा घूमती है। वधू मूल्य की प्रचलित परंपरा के कारण यापी का जीवन अंधकारमय होने की स्थिति में था। अपनी रचना के उद्देश्यों को स्पष्ट करते हुए लेखिका लिखती है कि- "मेरी यह रचना महज रचना नहीं बल्कि एक प्रयास है समाज के चेहरे पर पड़ी उस नकाब को उतार फेंकने की जो सदियों से नारी के प्रति पूर्वाग्रह सामाजिक पक्षपात भरी व्यवस्था से बनी हुई पुराने घिसी-पिटी ढकोसलों भरी गलत आस्थाओं को सामाजिक नियम एवं पारंपरिक रीति-रिवाजों का हवाला देकर स्त्रियों पर डालते हुए उन्हें प्रताड़ित करने वालों के खिलाफ।"[viii] अपने इस उद्देश्य में लेखिका सफल है। उपन्यास में पंक्ति-दर-पंक्ति स्त्री दुर्दशा की कथा कही गई है। सभी स्त्री पात्र पारंपरिक मूल्यों की मार झेलते हुए कराहती दिखाई देती हैं। इस कराह में मौन है, स्वीकार है, अगर कुछ नहीं है तो वह है प्रतिरोध। इन मूल्यों के प्रति प्रतिरोध तामार और काताम नामक दो पुरुष पात्र दर्ज करवाते हैं। इन दोनों पात्रों के प्रतिरोध से यह बात स्पष्ट होती है कि शिक्षा के माध्यम से ही रूढ़िवादी परंपराओं से मुक्त हुआ जा सकता है। उपन्यास में इन मूल्यों के प्रति स्त्री पात्र अपना विरोध दर्ज करवातीं तो उपन्यास अपने उद्देश्य में और अधिक सफल होता। बीच-बीच

में लेखिका स्वयं अपनी बात कहने के लिए उपस्थित होती है, जिससे कथा रस में बाधा उत्पन्न होती है। यही बात यदि वह अपने पात्रों से कहलवाती तो उपन्यास की रोचकता और अधिक बढ़ जाती।

'जंगली फूल' जोराम यालाम नाबाम द्वारा रचित उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 2019 ई. में हुआ। यह अरुणाचल प्रदेश की निशी जनजाति पर केंद्रित है। तानी वंश के आदि पुरूष आबोतानी के चरित्र को केंद्र में रखकर कथानक को गढ़ा गया है। उपन्यास के संदर्भ में स्वयं लेखिका का कथन है कि "तानी को केंद्र में रखा जरूर है, लेकिन कहानी काल्पनिक है।"[ix] ऐसा कहकर लेखिका कथा की प्रामाणिकता से छूट प्राप्त कर लेती है। आबोतानी वंश वृद्धि हेतु विवाह करता है तथा धान के बीज लाने और खेती सीखने के लिए लंबी यात्रा करता है ताकि उसका कबीला समृद्ध हो सके। वह अपने इस उद्देश्य में सफल होता है। साथ ही वह धान के बीज अन्य कबीलों में भी वितरित करता है जिससे कि मानव जीवन से भुखमरी को नष्ट किया जा सके।

'रूपतिल्ली की कथा' मेघालय राज्य की खासी संस्कृति और राजनीतिक संघर्ष पर केंद्रित है। पूर्वोत्तर भारत पर केंद्रित लेखक का यह दूसरा उपन्यास है, जिसका प्रकाशन 2019 ई. में हुआ। इस उपन्यास की विषय वस्तु के संदर्भ में आमुख के अंतर्गत उपन्यासकार ने लिखा है कि- "इस उपन्यास का नायक संस्कृति है-एक जाति की एक विशेष कालखंड की संस्कृति, जब उस जाति को अंग्रेजों द्वारा गुलाम बनाया जा रहा था। वह कालखंड 18 वीं सदी के कुछ अंतिम और 19वीं सदी के कुछ आरंभिक दशकों का है।"[x] इसके अधिकांश चरित्रों के क्रियाकलापों एवं सोच विचार में संस्कृति बसी हुई है, सभी संस्कृति से चालित हैं। किसी भी रचना की प्रारंभिक पंक्तियाँ अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं। वे लेखक के मंतव्य को आरम्भ में ही स्पष्ट कर देती हैं। आरम्भ में ही लेखक ने प्रकृति का वर्णन करते हुए राफताब को द्वंद्व का शिकार दिखाया है। उसका द्वंद्व भी संस्कृति प्रसूत है। उपन्यास के कथानक का जो काल है उस समय तक मेघालय की विभिन्न पहाड़ियों पर ईसाई और हिंदू धर्म प्रचारक आने लगे थे। ब्रिटिश सरकार का समर्थन प्राप्त होने के कारण ईसाई धर्म प्रचारकों को अधिक सफलता प्राप्त हुई। उपन्यास का उत्तरार्द्ध राजनीतिक संघर्ष का रंग लिए हुए है। उ तिरोत सिंह और रिंजा खासी पहाड़ियों को अंग्रेजी प्रभुत्व से बचाने के लिए संघर्ष करते हुए दिखाए गए हैं। जब वे दोनों तमाम खासी राज्यों को संगठित करने में लगे थे, उन्हें आसन्न युद्ध और पराजय दोनों की संभावना दीख रही थी। लेकिन अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष जरूरी है, वही संघर्ष पहचान स्थापित करता है। इसी संघर्ष की तैयारी दोनों कर रहे थे। उ तिरोत सिंह की गिरफ्तारी के साथ संघर्ष समाप्त होता है। डिंगयेई पेड़ के कटकर गिरने की क्रिया के माध्यम से खासी प्रतिरोध को प्रतीकात्मक ढंग से समाप्त होते दिखाया गया है। खासी शब्दों के प्रयोग से पाठकीय प्रवाह में बाधा उत्पन्न होती है, लेकिन यह स्थानीय रंग भरने का भी काम करता है। इससे उपन्यास की विश्वसनीयता बढ़ जाती है। एक बात अवश्य खटकती है कि इसमें चारित्रिक भाषा नहीं उभर पाती है। निरंतर लेखक और उसके संस्कारों की भाषा बहती रहती है। इसी कारण यह कथानक की दृष्टि से बेजोड़ होते हुए भी कला के चरमोत्कर्ष को नहीं छू पाती है।

उपर्युक्त वर्णित उपन्यासों के अध्ययन के पश्चात यह निष्कर्ष निकलता है कि उपन्यासकारों ने पूर्वोत्तर को औपन्यासिक स्वर देने में पूर्ण ईमानदारी बरतने का प्रयास किया है। पूर्वोत्तर के संदर्भ में उपन्यासकारों की दो श्रेणियाँ हैं- प्रथम पूर्वोत्तर के बाहर के उपन्यासकार और दूसरे स्थानीय उपन्यासकार। प्रथम श्रेणी के उपन्यासकारों का संस्कार भिन्न होने के कारण तमाम ईमानदारी बरतने के बाद भी वे कहीं-कही असंतुलित होते दीखते हैं। दूसरी श्रेणी के उपन्यासकारों के संबंध में यह लागू नहीं होता है। इन दोनों श्रेणियों के रचनाकारो में जो दूसरा प्रमुख अंतर दिखाई देता है, वह विषय चयन का है। बाह्य उपन्यासकारों ने सामान्यतः राजनीतिक समस्याओं को विषय के रूप में चुना है। संस्कृति की कथा कहने के संदर्भ में भी वह राजनीतिक विषयों से नहीं बच पाता है। वहीं स्थानीय उपन्यासकारों ने प्राय: सामाजिक समस्याओं को केंद्र में रखा है। ये दोनों अंतर संस्कार और रूचि केंद्रित हैं। जैसे-जैसे स्थानीय रचनाकारों की उपस्थिति इस क्षेत्र में बढ़ेगी, सांस्कृतिक-सामाजिक वैशिष्ट्य के स्वर को पूर्णता प्राप्त होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची

[i] सत्यार्थी, देवेंद्र.(1992). *ब्रह्मपुत्र.* दिल्ली: ज्ञान गंगा. पृ. 195

[2] ठाकुर, बलभद्र.(1958). *मुक्तावती.* इलाहाबाद: हिन्दी भवन. पृ. झ

[3] वही, पृ. 40

[4] भिक्खु, कृष्ण चन्द्र शर्मा.(1978). *रक्तयात्रा.* नयी दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस. पृ. 207-208

[5] वर्मा, नवारुण.(1983). *जय आइ असम,* इलाहाबाद: स्मृति प्रकाशन. पृ. 25

[6]दुबे, डॉ महेन्द्र नाथ. (1999). *मुक्ति.* नयी दिल्ली: वाणी प्रकाशन. पृ. 21

[7] तलवार, वीर भारत. (2012). *झारखंड के आदिवासियों के बीच.* नई दिल्ली: भारतीय ज्ञानपीठ. पृष्ठ 455

[8] लीली, तुम्बम रीबा. (2018). *उस रात की सुबह.* नई दिल्ली: पृथ्वी प्रकाशन. पृष्ठ 7

[9] नाबाम, जोराम यालाम. (2018). *जंगली फूल.* नई दिल्ली: यश पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स. प्रस्तावना. पृष्ठ 5

[10] मिश्र, श्रीप्रकाश. (2019). *रूपतिल्ली की कथा.* इलाहाबाद: लोकभारती प्रकाशन. आमुख पृष्ठ 7

*(**लेखकीय परिचय:** अरविंद कुमार यादव पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग, मेघालय के हिंदी विभाग में शोधरत हैं।)*